राष्ट्र की उत्पत्ति एवं उसका विवेचन

शोध- लेख: प्रियंका शर्मा

वसुधैव कुटुंबकम एवं सर्वेभवंतु सुखिनः जैसी उक्तियाँ भारतीय चिंतन धारा का मेरुदण्ड रही है ।भारत ने हमेशा प्राणी मात्र का कहना चाहिए कि अखिल चर और अचर जगत के कल्याण की कामना की है ।जहाँ अहम् ब्रह्मास्मि मूलक अद्वैतवाद सर्वत्र प्रवर्तित रहा हो वहाँ स्व और पर का संधान करना व्यर्थ के कुतर्क के सिवा कुछ नहीं हो सकता। यह ठीक है कि राष्ट्रीय शब्द का विनियोग प्रत्येक भारतीय साहित्य में होता आया है वैदिक साहित्य से अब तक। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि भाषाशास्त्रीय सिद्धांतों के आलोक में उसका अर्थ संकोच भी होता रहा है ।यह एक परंपरा सी बन गई है कि भारतीय मनीषा की प्रत्येक शोध दृष्टि अपने किसी भी विषय के मूल उत्स की तलाश में अपने प्राचीन वैदिक वाङ्मय तक दौड़ लगाती रही है और अपना अभीप्सित प्राप्त करती रही है। राष्ट्रीय चेतना या भावना के जिज्ञासु शोध प्रज्ञों ने भी इसी पद्धति, इसी प्रक्रिया का अनुगमन किया है। मैं भीअपना अभीप्सित प्राप्त करने के लिए वैदिक साहित्य से लेकर अब तक किए गए शोध -कार्यों की परिक्रमा करने को विवश हूँ ।

मेरी शोध- प्रक्रिया के तीन प्रस्थान बिंदु है- राष्ट्र-

राष्ट्रीयता, चेतना और राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर

वैसे तो कविवर बच्चन ने लिखा जरूर है और सही

लिखा है कि 'लक्ष्य पर जड़ीआँखें/ भला कब देख पाती/ साज धरती का, सजीलापन गगन का। किंतु मेरी दृष्टि अपनी शोध-यात्रा के पड़ावों में भी मनोयोग से रम जाने का लोभ संवरण नहीं कर सकी ।मुझे यह

तर्कसंगत लगा कि 'राष्ट्र 'शब्द की व्युत्पत्ति फिर उसकीसंरचना-पद्धति उसके विकास की मानव शास्त्रीय,समाजशास्त्रीय तथा इतिहास परक अवधारणाओं की यथासंभव मीमांसा करती चलूं ।इस संदर्भ में अपने पूर्ववर्त्ती शोध प्रज्ञों से मिले पाथेय ने मुझ में अनेक मौलिक उदभावनाओं के उपस्थापन कर सकने का स्फुरण पैदा किया, अपनी नई सोच की ओर अग्रसर होने का अवकाश और अवसर प्रदान किया।

यह तो सच है और और सर्वस्वीकृत भी कि 'राष्ट्र'

शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में अनेक जगहों पर

हुआ है। व्यावहारिक जगत में सनातन धर्मावलंबी

जनता वैदज्ञ ना होते हुए भी 'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञयानाम '१।जैसी प्रार्थनाएँ करती रहीहै। इसी को विद्वान शोध प्रज्ञों तथा समीक्षकों ने ससंदर्भ व्याकरणिक व्युत्पत्तिपरक व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया है।

डॉ सुनीति ने अपने शोध- प्रबंध 'दिनकर की राष्ट्रीय भावना' में एक निवेदन शीर्षक के तहत लिखा है- राष्ट्र- यह शब्द 'राज-दीप्तो' धातु से बना है।२ इसी तथ्य को डॉ रेखा श्रीवास्तव ने अपने शोध- ग्रंथ दिनकर और माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय चेतना का तुलनात्मक अध्ययन में थोड़ी भिन्नता के साथ संदर्भित किया।डॉ रेखा श्रीवास्तव का कथन है - व्युत्पत्ति की दृष्टि से राष्ट्र शब्द रास या राज धातु से 'ष्ट्रन' प्रत्यय के योग से बनाहै। राष्ट्र शब्द का अर्थ है- "रासन्ते चारु शब्दम कुर्वते जनः यस्मिन प्रदेशे विशेषे तद राष्ट्रम ।"३डॉ श्रीवास्तव ने(' शब्दार्थ -कौस्तुम' पृष्ठ 943को संदर्भित किया है।) उन्होंने 'वाचस्पत्यम' का संदर्भ प्रस्तुत करते हुए लिखा- 'राष्ट्र -राज+ष्ट्रन' ।४(षष्ठ भाग पृष्ठ - 4806) काफी अध्यवसाय पूर्वक उन्होंने पुनः 'पी०के० गौड़ तथा सी०जी०कार्वे' की संस्कृत-अंग्रेजी डिक्शनरी'

भाग 2 का उदाहरण प्रस्तुत किया है- "राज+ष्ट्रन - A kingdom realm expire ,. राष्ट्र, दुर्ग बलानि च सामदंडो प्रशंसति नित्यं राष्ट्राभिवृहये ।A district territory country reign-as-in 'महाराष्ट्र नागराणि च राषट्राणि धन धान्य सुतानी च' तस्य प्रसुभ्य ते राष्ट्र: ष्ट्र: ष्ट्रम- राज्ञामपि प्राणा:क्षीयते राष्ट्र:।"५यह विस्तृत विश्लेषण नीरस भले हो गया हो, किन्तु ग्राह्य और स्तुत्य भी है। वैसे भी उक्त विद्वद्वन्दय का पांडित्य किसी से छिपा नहीं है ।

डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपने लोकप्रिय निबंध 'राष्ट्र का स्वरूप 'में 'पृथ्वी- सूक्त' की "माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या' 'नमो माता पृथिव्यै ।" जैसी ऋचाएं उदधृत की है ।"६('पृथ्वी पुत्र में संकलित लेख राष्ट्र का स्वरूप 'पृ-९१)

उपर्युक्त उदाहरणों से यह तो स्पष्ट होजाता है कि वैदिक साहित्य में 'राष्ट्र 'शब्द की अवस्थिति के पुष्ट और विश्वसनीय प्रमाण है किंतु, यह ध्यातव्य है कि इस

शब्द का प्रयोग अत्यंत अविरल है और सिर्फ इन्हीं

प्रयोगों के आधार पर राष्ट्रीयता के मानदंड तय नहीं

किये जा सकते हैं। दूसरी बात यह है कि वेदों में

राष्ट्रशब्द का अर्थ वह नहीं जो हम आज ग्रहण करते

हैं ।वैदिक कालीन राष्ट्र शब्द मूलतः प्रजा-बोधक रहा है।वस्तुतः प्राचीन भारत में भू-भाग नहीं, भूमंडल की अवधारणा थी। अखिल ब्रह्मांड, समस्त भूमंडल त्रैलोक्य , त्रिभुवन सप्तावरण सृष्टि और प्रलय जैसे शब्द असंख्य बार प्रयुक्त हुए हैं ।भूप, भूपति, महीश, महीपति जैसे अनगनित प्रोयोगों के साथ-साथ चक्रवर्ती सम्राट , एक छत्र सम्राट,एकराट जैसे शब्द भी प्रचलन में रहे हैं । अपने-अपने आराध्य देवत स्वरूपों को 'अखिल ब्रह्मांड नायक/नायिका, जगदीश्वर, विश्वनाथ,त्रिलोकीनाथ, अखिल भुवन पति आदि संबोधनों से इनकी अभ्यर्थना की जाती रही है ।

'संस्कृति' का संदर्भ भी अछूता नहीं है ।कृपालु,

दीनानाथ,प्रजावत्सल, भक्तवत्सल, पतित -पावन, समदर्शी,करूणामय,दानशील,औढरदानी ,अतुलित बलधाम,अपराजेय ,निर्गुण , निर्विकार,गुनातीत आदि विशेष सिर्फ देवी- देवताओं के लिए नहीं अपितु अपने राजाओं के लिए प्रयुक्त किए जाते थे । मुझे लगता है कि राज्य , प्रकान्तर से राष्ट्र की उत्पत्ति का देवी सिद्धांत सर्वत्र एवं स्वतः स्फूर्त्त रूप से लागू था।

उपर्युक्त विश्लेषण का तात्पर्य यह है कि वैदिक एवं पौराणिक काल में राष्ट्र शब्द के जो यतिकिंचित प्रयोग मिलते हैं,उनमें उस राष्ट्रीय भावना के तत्त्व नहीं मिलते हैं अथवा अप्राप्य है , जो मेरी शोध-वस्तु का प्राण तत्व है ।

वस्तुतः राष्ट्रीयता भी काव्यशास्त्रीय स्थायी भावों की तरह है ।जिसके रसोद्रेक के लिये विभावनुभाव संचारी भाव का संयोग आवश्यक है । कहते है न कि नीम खाने पर ही गुड़ के मिठास की महत्ता जान पड़ती है। इसी प्रकार जब तक राष्ट्र की अस्मिता पर आँच नहीं आती जब तक राष्ट्र के जन का दलन-शोषण नहीं होता, राष्ट्रीयता का भाव अवचेतन में ही पड़ा रहता है।पिछले संदर्भ में जिन राष्ट्र, उसके शासक की चर्चा हुई , उस दौरान राजा प्रजावत्सल्य,न्यायप्रिय उदार और समदर्शी होते थे । भूमि "वसुं धारयति सा वसुंधरा" को चरितार्थ करती थी। अतः प्रजा चैन की नींद सोती थी । न राष्ट्र को खतरा था, न प्रजा की संपत्ति को न उसके परिजनों को ।राजा के प्रति अविचल निष्ठा,अविकल भक्ति ही प्रजा की इतिकर्त्तव्यता थी । जब राष्ट्र पर संकट नहीं तो राष्ट्रीयता कैसी? उस समय आत्मीयता मूलक या आसक्ति परक जो अभिव्यक्ति थी, उसे ही हम तत्कालीन राष्ट्रीयता कहकर संतोष कर लेते है ।

भारतीय मान्यताओं के अनुसार इस चराचर जगत की सृष्टि का का प्रथम क्षण'एकोहं- बहुस्याम'की गूंज के साथ हुआ। ईश्वर ने आदिपुरुष के रूप में घोषणा की- 'मैं एक हूँ ।अनेक बनूँगा।' मानव शास्त्र और सामाजशास्त्र की स्थापना भी यही है । मनुष्य एकाकी उत्पन्न हुआ। सृष्टि के विकास -क्रम में परिवार अस्तित्व में आया ,फिर समाज -राज्य-राष्ट्र आदि उत्तरोत्तर क्रम से विकसित होते चले गये।इसी तथ्य को डॉ देवराज शर्मा पथिक ने प्रकान्तर से व्यक्त किया ।उन्होंने अपने शोध-प्रबंध में लिखा-"मानव-जीवन के पृथ्वी पर आगमन की कहानी इस तथ्य का उद्घाटन करती है कि शनै:-शनै मानव एकाकी जीवन के सोपान को पार करता हुआ, परिवार समाज और बाद में राष्ट्र के उच्च शिखर पर पहुँचने में कैसे सफल हुआ है।"७

(नयी कविता के राष्ट्रीय चेतना,पृष्ठ24)

इसी विकास का मत्त्वपूर्ण पड़ाव रहा है कबीलों का अस्तिव में आना ।यह कोई सुनियोजित अथवा संवैधानिक संगठन नहीं था।इसलिए इसके ऐतिहासिक साक्ष्य कम, लोक -संभव साक्ष्य ज्यादा मिलते है ।इसकी अनेक कहानियाँ लोककथाओं में, जनश्रुतियों में, दंतकथाओं में मिलती है। हिंदी के कुछेक उपन्यास, कुछेक कहानियां, कबीलाई जीवन और उसकी संस्कृति पर आधारित है।आचार्य चतुरसेन के उपन्यास वयं रक्षाम: तथा राहुल सांकृत्यायन के 'गंगा से बोल्गा तक' सरीखे असंख्य उपन्यासों की लंबी फेहरिस्त है। इस कबीलाई जीवन की एक विशेषता ही मेरे इस विवेचन की रीढ़ है कि कबीले के लोगों की प्रतिबद्धता और उसका कट्टर अनुशासन। कबीला- प्रमुख की अनुमति के बगैर कोई कुछ नहीं कर सकता। दूसरा कबिला भी उतना ही कट्टर होता है। दो कबीलों की टकराहट कट्टर दुश्मनी पैदा करती है और पुश्त दर पुश्त भी चल सकती है। अपने-अपने कबीले के प्रति यह प्रतिबद्धता उसके स्वाभिमान की रक्षा की पद्धति ही मेरी समझ में, आधुनिक राष्ट्रीयता का आदिम रूप है। अपनी रचना 'कोयला और कवित्व' राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने राष्ट्रीयता को,जो भैंस वृत्ति कहा है, शायद उनके दिमागी नेपथ्य में कबीलाई कट्टरता ही रही होगी -

'टिकने देती भैंस नहीं बाहर वाली भैंसों को

अपने खूँटे से ठकेल कर बाहर कर देती है।'

यही भाव विकसित, प्रशस्त होकर नर की भाषा में राष्ट्र राष्ट्र,राष्ट्र का प्रेम, राष्ट्र का गौरव कहलाता है।' उपर्युक्त विश्लेषण की मूल्यवत्ता और प्रासंगिकता सिर्फ कितनी है कि वह व्यक्ति और समाज के बीच की स्थिति को रेखांकित करती है। वैसे भी कबीलाई व्यवस्था अपनी पाश्विकता और बर्बरता के कारण गर्हित मानी जाती जाती है। कहा जा चुका है कि व्यक्ति अपनी रक्षा की खातिर तथा यूथचारी वृत्ति के उत्तरोत्तर विकास के कारण अपना -अपना समूह बनाता चला गया और इसे ही समाज कहा जाने लगा। कालांतर में समाज के सम्यक संचालन के लिए कुछ स्वत: स्फूर्त नियमों के साथ एक आचार -संहिता सी बन गयी। साहचर्य से उत्पन्न सहज रागात्मक वृत्तियों ने समाज के प्रति आसक्ति और निष्ठा उत्पन्न की। वर्णाश्रम व्यवस्था ने समाज को शाखा और प्रशाखाओं में विभक्त जरूर किया। फिर भी संपूर्ण समाज के प्रति उसके सदस्यों की निष्ठा और आसक्ति बढ़ती ही गयी । समाज का गौरव व्यक्ति का गौरव बना और व्यक्ति का गौरव समाज का गौरव। इसे ही प्रकारांतर से जातीय गौरव कहा जाने लगा जो मूलतः राष्ट्रीयता का ही प्रतिरूप है समाज से राज्य, राज्य से राष्ट्र का स्वरूप निर्धारित हुआ, यह सर्वविदित और स्पष्ट है । मेरे विचार से इस पर किसी विस्तृत विमर्श की न तो आवश्यकता है और न उपादेयता।

राष्ट्र की उत्पत्ति और व्युत्पत्ति के यत्किंचित विवेचन के उपरांत 'राष्ट्र' की परिभाषा भी विचारणीय है।अनेक चिंतकों तथा अनुसंधाताओं ने इस परिप्रेक्ष्य में काफी गहन -चिंतन मनन किया है। प्रायः सभी अनुसंधानताओं ने परंपरा से चली आ रही परिभाषाओं को ही उद्धृत किया है। यही कारण है कि इन परिभाषा ओं का संदर्भ पृष्टपेषण-तुल्य होते हुए भी अपनी उपादेयता सिद्ध करती हैं।

मेरी दृष्टि में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा दी गई 'राष्ट्र' की परिभाषा सर्वाधिक स्पष्ट सर्वांगपूर्ण और सर्वतिशायी है। उन्होंने 'राष्ट्र' को परिभाषित करते हुए लिखा है-"भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मेलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।"८

डॉ०अग्रवाल की धारणा है -"बिना संस्कृति के जन की कल्पना कबंधमात्र मात्र है।संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है ।संस्कृति के विकास और अभ्युदय के द्वारा ही राष्ट्र की वृद्धि संभव है। राष्ट्र के समग्र रूप में भूमि और जन के साथ- साथ जन की संस्कृति भी महत्वपूर्ण है।"९

डॉ० सुधींद्र ने लिखा है- "राष्ट्र का आधार एक निश्चित भूभाग होता है, जिसके कारण ही जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी होती है। सच तो यह है कि भूमि, भूमिवासी जन और जन संस्कृति तीनों के सम्मेलन से ही राष्ट्र का सृजन संभव होता है।" १०

राष्ट्रीय काव्यधारा के लोकप्रिय एवं मूर्धन्य कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्र के बारे में लिखा-"राष्ट्र के मानी उस मिट्टी के नहीं होते जिस मिट्टी पर वह राष्ट्र बसा हुआ है, न उस आकाश के होते जो उस पर छाया हुआ है, न उस धन के होते जो उसके पास एकत्रित

है न उस प्रतिभा के होते जिसे वह अपने या औरों पर दिखाकर गर्वित है, किंतु उस वचन और कृति के माने राष्ट्र होता है, जो उसके निवासियों के जीवन से निकली है, उन्मेष बनकर आती है, और इतिहास बनकर ठहर जाती है ।" ११

डॉ० सुनीति अपने शोध- प्रबंध 'दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना' में लिखती हैं -"राष्ट्र -वस्तुत: यह शब्द राज दीप्तौ धातु से बना है। राजते दीप्यते प्रकाश्यते इति राष्ट्रम। अर्थात वह भूखंड जो स्वयं प्रकाशित हो, जो विदेशों के पदाक्रांत ना हो, सर्वतंत्र स्वतंत्र हो, वह राष्ट्र कहलाता है। देश भी इसी अर्थ का वाचक है।" १२

बाबू गुलाब राय का कथन है-"राष्ट्र एक बड़ी चीज है।वह एक साथ हमारे सामने नहीं आता। भगवान की भांति वह भी प्रतीकों द्वारा दृष्टिगोचर होता है। इन बाह्य उपकरणों में राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्र गीत, राष्ट्र का मानचित्र, नदी, पर्वत, समुद्र आदि प्राकृतिक दृश्य अतीत की गौरव गाथाएं और भविष्य का स्वर्णिम प्रकाश, राष्ट्र की फौजी परेड आदि हमारे राष्ट्रीय पर्व, राष्ट्र की व्यवस्थापिका सभाएँ आदि संस्थाएँ और उनके गगनचुंबी विशाल भवन आदि हैं । यह राष्ट्र को मूर्त्त रूप में हमारे सामने रख देते हैं। ये हमारे राष्ट्रीय भाव के उद्दीपन का काम करते हैं।"१३

डॉ राजाराम यादव ने अपने शोध- प्रबंध राष्ट्रीयता की अवधारणा और दिनकर का काव्य में विविध विदेशी विद्वानों की परिभाषाएँ उद्धृत की है। अपने ग्रंथ के 22 व 23 वे पृष्ठ पर कॉर्ल बेकर, हॉजर, रेमना की सार गर्भित उक्तियों को संदर्भित किया है।१४

प्रोफेसर कॉल वेकर के अनुसार- "एक विशेष भूभाग में रहने वाला जनसमूह यदि स्वयं को राष्ट्र माने तो वह राष्ट्र ही है ।"

प्रोफेसर हॉजर का कथन है -"जाति भाषा की एकता नहीं, बल्कि लोगों की एक साथ मिलकर रहने की प्रवृत्ति ही राष्ट्र को जन्म देती है।"

प्रोफेसर एस. रेमना ने भावनात्मक एकता को राष्ट्र की नींव कहा है- "हम इस देश के निवासी हैं ।हमने और हमारे पूर्वजों ने इस देश की रक्षा के लिए अनेक कष्ट झेले हैं ,उसकी उन्नति और अवनति के लिए हम ही उत्तरदायी हैं। हम सबको साथ- साथ रहना है और आने वाली पीढ़ियों के लिए उचित आदर्शों का निर्माण करना है।"

डॉ रेखा श्रीवास्तव के शोध -ग्रंथ दिनकर और माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय भावना का तुलनात्मक अध्ययन' में भी यही पद्धति परिलक्षित होती हैं उन्होंने भी कुछ एक विदेशी विद्वानों के अभिमत अपने शोध -प्रबंध में सगुंफित किए हैं जिनमें जर्मन अल्फ्रेड, रैमजे म्यूर,शुमैन फ्रेडरिक, आर.जी.गेटेल .इ. एच. कार ,जे.डब्ल्यू बर्गीज, स्टालिन आदि प्रमुख है ।१५

यहां उनका संदर्भ प्रस्तुत किया जा रहा है -

जर्मन अल्फ्रेड -(A nation is a body of people united by a corporate sentiment of peculiar intimacy, intensity and dignity,related to a definite home country."१६

गेटेल ने राष्ट्र की एकता का आधार भौतिक नहीं मनोवैज्ञानिक माना है । इसलिए वे कहते है-'The base of unity in modern state is psychological rather physical,secindary groups called nationalities,united by a common customsand interests and when they form a political unit,the became a nation.(आधुनिक राज्य की एकता का आधार मनोवैज्ञानिक है, भौतिक नहीं ।गौण वर्ग जो राष्ट्र जातियाँ कहलाती है, एक सामान्य भावना ,समान रीति -रिवाज तथा रूढ़ियों से मिलकर जिस राजनीतिक इकाई का निर्माण करती हैं, उसे राष्ट्र कहते हैं ।)१७

रैम्जे म्यूर "ऐसे लोगों के समूह को राष्ट्र मानते हैं,जो निकट संबंधों के बंधनों से बंधे हो ।"१८

रूपर्ट इमर्सन के मत में- "राष्ट्र परम्परागत आदर्शों एवं भावी लक्ष्य की एकता से युक्त जन समूह को कहते हैं ।"१९

जे.डब्ल्यू बर्गेस के अनुसार -"एक जन समुदाय ,जिसका भाषा -साहित्य ,रीति -रिवाज, भले -बुरे की चेतना सामान्य हो और जो भौगोलिक एकता युक्त प्रदेश में रहता हो, राष्ट्र कहलाता है ।"२०

उपर्युक्त सारी परिभाषाएं अपने समय के हिसाब से जितनी सार्थक और सटीक रही हो, किंतु आज 21वीं सदी के दौर में उनकी अर्थवत्ता सिमट गयी है ।आज अंतर्राष्ट्रीयता का दौर है, जिसके चलते आए कुछ शब्दों की अर्थवत्ता और उपयोगिता निरस्त हो गई है ।समय के बदलते परिदृश्य में वंश ,जाति भाषा जैसे शब्दअनिवार्य नहीं रह गए हैं। जिन दिनों पारंपरिक पेशे या व्यवसाय का ही अनुसरण होता था, इसलिए इन शब्दों की प्रासंगिकता थी। यातायात के सीमित साधनों के कारण ,संचार माध्यमों के सीमित क्षेत्र विस्तार के कारण भी प्रायःनौकरियाँ या व्यवसाय स्वदेश तक सीमित हुआ करते थे ।आज यातायात और संचार माध्यमों के क्षेत्र का अत्यंत तीव्रता से और विस्मयकारी विकास हुआ है ।आज 'कर लो दुनिया मुठ्ठी में 'जैसी भावना सद्य: प्रतिफलित है। राष्ट्र और राष्ट्रीय की नीतियाँ अंतर्राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर बन रही है ,बनायी जा रही है ।बहुत से देशों में दोहरी नागरिकता का प्रावधान है ।उदाहरण ,अमेरिका जैसे देश में विश्व के प्राय: सभी देशों के नागरिक निवास करते हैं। अधिकांश ने अमेरिका की नागरिकता भी ले ली है ।स्वाभाविक है कि यह नागरिकों अमेरिका के प्रति वह राष्ट्रभक्ति नहीं रख पायेंगे जो जन्मजात अमेरिकी नागरिक में स्वतः स्फूर्त होता है ।एक वंश या एक जाति या एक भाषा वाली बात यहां स्वयमेव निरस्त हो जाती है। एक भू-भाग वाली बात भी खर्रा नहीं उतरती ।

संदर्भ- सूची ग्रंथ

1-अहं राष्ट्री संगमनी- ऋग्वेद,मंडल10,अ10,सू.125ऋ०2-3

2-डॉ०सुनीति-दिनकर की राष्ट्रीय भावना, एक निवेदन शीर्षक,पृ०क

3-श्रीवास्तव,डॉ०रेखा, दिनकर और माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय चेतना का तुलनात्मक अध्ययन, शब्दार्थ कौस्तुम पृ०943

4-वाचस्पत्यम,षष्ठ भाग पृ-4806

5-गौड़ पी. के, कार्वे सी.जी,संस्कृत-अंग्रेजी डिक्शनरी भाग-2

6-अग्रवाल, डॉ०वासुदेव शरण, राष्ट्र का स्वरूप,पृथ्वी-सूक्त,अथर्वेद19/5/1(पृथ्वीपुत्र में संकलित लेख राष्ट्र का स्वरूप,पृ०91

7-पथिक,डॉ. देवराज शर्मा,नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना,पृ24

8-अग्रवाल,डॉ वासुदेव शरण,राष्ट्र का स्वरूप,पृ.91

9-अग्रवाल,डॉ वासुदेव शरण,अथर्ववेद, पृथ्वीसूक्त,मं19,ऊ5श्लोक.1

10- डॉ०सुधींद्र,हिंदी कविता में युगांतर,पृ,229

11-चतुर्वेदी,माखनलाल,राष्ट्रीयता की आवश्यकता शीर्षक लेख,दैनिक हिंदुस्तान में (रविवार दि०8.10.1961को प्रकाशित)

12- डॉ. सुनीति, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना,एक विवेचन शीर्षक,भूमिका,पृ०क

13-राय, बाबू गुलाब,राष्ट्रीयता,पृ०16

14-यादव,डॉ, राजाराम,राष्ट्रीयता की अवधारणा और दिनकर का काव्य,पृ०,२२-२३(प्रो०कार्ल वेकर,हॉजर,रेमनों की उक्तियाँ)

15-श्रीवास्तव, डॉ०रेखा,दिनकर और माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय भावना का तुलनात्मक अध्ययन, में उद्धृत-

16-जिर्मन अल्फ्रेड,The propects of democracy and other essays, p.g-84

17-गेटेल,political science, p. g-52

18-रैम्जे म्यूर, Nationalism and internationlism, p. g-31

19- रूपर्ट इमर्सन, From Expire to nation, p.g-95

20-जे०डब्ल्यू बर्गेस, political sci and constitutional law, p.g-11